

‘अहिंसा’ पत्र

ग्राहक बनिये और बनाइये

‘अहिंसा’ नामक पाक्षिक पत्र प्रति पत्र जयपुर से इन पुस्तक के लेखक पण्डित इन्द्रलाल जी शास्त्री विद्यालङ्कार के सम्पादकत्व में निकलता है। इसका प्रत्येक मन्व पढने योग्य होता है। वार्षिक मूल्य पाँच रुपये।

पता—अहिंसा कार्यालय, जयपुर सिटी

‘जैनदर्शन’ पत्र

भारतवर्षीय दि० जैन सिद्धांत रक्षिणी समाज का मुख पत्र ‘जैन दर्शन’ साप्ताहिक श्री पण्डित मन्सूनलाल जी शास्त्री विद्यालङ्कार के सम्पादकत्व और श्री बानू तंजपालजी काला साहित्य मनीषी के उप सम्पादकत्व में शोलापुर से निकलता है, जिसमें धार्मिक सामाजिक रोम्य चर्चे भाषिक रहते हैं। अवरय ग्राहक बनकर लाभ उठाइये। वार्षिक मूल्य ३।।) रुपये।

पता—जैन दर्शन कार्यालय
कल्याण भवन, शोलापुर

सब प्रकार के कागज और स्टेशनरी मिलने का पता

इन्द्र पपर मार्ट, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर सिटी

प्राक्कथन

भारत की मूल संस्कृति और उसका रूप क्या है इस बात को इस पुस्तक में इस पुस्तक के विद्वान् नेरक श्री० प० इन्द्रनालनी शास्त्री, विद्याकार, धर्मविद्वान् ने अनेक प्रमाणा से सुस्पष्ट किया है जो आगोपात पढ़ने से ही विद्वित हो सकता है। इस पुस्तक का सभी ओर से मुक्त फट से प्रकाश हुआ और इसके पथ प्रचार और प्रसार की आवश्यकता बतलाने के लिए पत्रों का ताना लग गया।

सुदूर दिनों पहले ही यह पुस्तक १५०० की संख्या में परम स्नेही प्ठार सेता सेठ चपाताननी पाइया लालगढ़ वाले सुचानगढ़ को आर्थिक सहायता से प्रकाशित होकर वितीर्ण की गई थी। अथ प्ठम पुस्तक की निम्नलिखित महानुभावों ने निम्नलिखित सख्या में प्रतिया खरीदीं पर जो भारत की मूलसंस्कृति के प्रसार में सहयोग दिया है यह अनिर्वचनीय और अनुकरणीय है। आप सभी महानुभाव धन्यवाद के भावन होने से सभी की सेवा में मभा को और से साभार धन्यवाद है।

- ५०० श्री० मेठ चरीचन्द जी गगवान जयपुर
 ५०० श्रीमती रानरानी लक्ष्मीदेवी जी ए बनारस
 २०० श्री० सेठ फनेहलालनी लामूलाननी ध्याषदा सुचानगढ़
 निशानो पो० रगिया (आसाम)

- २०० श्री० मेडी भ्रामर्षे विश्वनाथपाट (आसाम)
 २०० श्री० मेड घशानाचनी पाड्या तातगड वागे मुचानगड
 २०० श्री० रीथरी धनदेव महाशया फतदचरनी जैन नंथरवार
 गोइना (रोहतक)
 १०० श्री० मर सड हुननारनी नुरोगा, इन्दौर
 १०० श्री० लाना परागीवाननी भगरानशातता पाटनी
 दहली
 १०० श्री० भरतीनारनी वार नीशन जोरणा (आसाम)
 १०० श्री० मेड थरीनाराणता पाटनी दुर्गे (म०प्र०)
 १०० श्री० संड छोटानात येणीरद तलना
 १०० श्री० सेड माणारचन्द धीरचर गाधी पलटन
 १०० श्री० मेड मामीलाल नी गुलशनचन्द पदरागा
 १०० श्री० सेड मामरन्त फूलचर नलवाडी (आसाम)
 (एकत्रिनश्य से)
 १०० श्री० मेड रातमननी फरारचन्द जी सोगानी पारोली
 (भीलवाडा)

इन प्रतिशो के श्रय मे श्री० लरमीचरजी स्वचर जी छारदा
 नलवाडी (आसाम) एव श्री जीवनलाननी पाड्या दुर्गे ने द्दार
 सज्जता को प्ररणा की है एव धयगर के पात्र है ।
 आगा है रि अ य सज्जन भी मनसा दाया कर्मणा धर्म प्रसार के
 का । मे सहयोग देते रहेंगे ।

निवेदन—

निरजनान जैन, तनसुचतात चाला
 मनी

श्रीम शु १३ स०२०१३
 (नी महावीर तय ती)

भारतवर्षीय निम्नर विद्वान्तगिणी सभा,
 १६१ काजवादेनी रड, मम्बई २

भारतीय संस्कृति का मूल रूप

संस्कृति शब्द का अर्थ—

आनकाल 'संस्कृति की बड़ी खचा है । सभी लोग संस्कृति की रक्षा के लिए बड़े बड़े नार भी लगात हैं । बड़ी बड़ी सभायें और बड़े बड़े सम्मेलन भी होत हैं परन्तु संस्कृति क्या है और यह मन्की णक कैसे हो सकती है, इस त्रिपय पर सब सम्मन मैदानिक या तात्विक दृष्टि से कोई रिचार नहीं होता । जैसे पहले तथा आन भी 'धर्म शब्द का व्ययहार और उसकी रक्षा के लिए सभी कहते थे और कहते भी हैं परन्तु सर्वसम्मत तात्विक या मैदानिक दृष्टि से धर्म का स्वरूप निरिचन नहीं किया जाता । उमी प्रकार 'संस्कृति और उसकी रक्षा के लिए सभी की चिन्ताहट है परन्तु यह संस्कृति क्या है और उसकी रक्षा कैसे हो इस पर कहीं भी रिचार नहीं किया जाता ।

निस प्रकार धर्म और उसकी रक्षा सभी को प्रिय होन पर भी उसके विभिन्न विचारा क मानन वाल प्रापन मे ही लडत है और उमी आपस का लडाई से आन म निरपक्षता का डिडिम घोष चल रहा है । उसी प्रकार एक दिन ससृति और उसका रक्षा का भी यही हाल होने वाला है । धर्म एक एसी वस्तु है जो सभी को प्रिय है और इसके बिना वास्तव म काम भी नहीं चलता परन्तु आन नैसा दुर्गति धर्म का दुड है उसी रिमी की नहा अथ धर्म का चगड ससृति शब्द का प्रयोग होने लगा है । आन तो जो धर्म निरपक्षता क आश पधना सुकुटमणि है वे भी ससृति और उसकी रक्षा के गीन गात हैं परन्तु यह ससृति है क्या चीन ? इन पर विचार नहीं होना उमी पर बोडसा विचार करने के लिये इन पुस्तिका द्वारा प्रयास किया जाना है ।

आजकल भारत म धर्म का स्थान ससृति ने ले लिया है । वास्तव म दखा जाय तो धर्म साधन है और ससृति साध्य है । साध्य की ओर तो लक्ष्य गया है परन्तु उसके साधन से निरपक्षता निपाठ जाती है । साधन के बिना साध्य की निष्पत्ति कैसे होगी असरा कोड विचार नहीं करता ।

अब, शब्द में ही रहता है । अर्थ शब्द से अलग नहीं होता । ससृति शब्द ससृत्व भाषा का है, धर्म शब्द भी ससृत्व भाषा का ही है । जैसे धर्म शब्द का अर्थ में ही अनुवाद 'रिलीजन' कर डाला गया है वैसे 'ससृति शब्द का भी अनुवाद 'कलचर Culture' कर डाला गया है । परन्तु दोनों ही यथार्थ

नहीं है। चाहे किसी भाषा के शास्त्र का अनुवाद किसी दूसरी भाषा में कर लिया जाय परन्तु उसका यथावत भाव उस भाषा के ज्ञान बिना प्राप्त नहीं होता जिसमें कि वह मूल शास्त्र है। धर्म शास्त्र में भी जो आनपूर्णा है उसका भी मूल कारण यही है कि उसका अर्थ ही समझ में नहीं आता। जो अर्थ जो भाषा द्वारा उसे शास्त्र का अर्थ रिलीजन करत है उसका अर्थ म रिलीजन 'Religion' शब्द का जो अर्थ होता है वही धर्म का घटना है। धर्म का जो वास्तविक अर्थ है, रिलीजन का कभी नहीं घटता।

जिस प्रकार धर्म शब्द मृ धातु से बना है जिसका कि अर्थ धारण करना है उसी तरह मन्त्र शब्द 'मृ धातु' से बना है। 'मृ धातु' का अर्थ है करना। 'मृ धातु' के मम उभयग और मिन प्रत्यय से और क न क व्याकरणानुसार ची जान पर लि रह जाने और मर लगाने से मन्त्र शब्द बन जाता है। मन्त्र शब्द का अर्थ है जन्म प्राय आया जन्म कृति अर्थात् लौकिक पारलौकिक आध्यात्मिक आधिभूत राक्षसीविक्रमामिक आदि सभी कृतियां से जन्मता तभी आ मन्त्री है यद्यपि इनमें धर्म का स्पष्ट हो। धर्म चाहे आत विविध रूपा में समझा जाने लगा हो और व्यक्तिया या समुदायों द्वारा विभिन्न नामों से पुकारा जाता हो परन्तु उसका मन्त्राया और वास्तविक स्वरूप अनुभवभावामक मन्त्र कतव्य पाठनामक ही है। इसलिए धर्म को मान्य और मन्त्र शब्दों को मान्य बतलाया गया है परन्तु धर्म की प्रकृति का जाना है। राक्षसीविक्रम धर्म को अमनुष्य

बतलाया तथा निया जा रहा है । धर्म की उपेक्षा किये जाने में धर्मों की विविधता तथा धर्मों के लिए लड़ाई भगड़े होना बतलाया जाता है परन्तु वास्तव में देखा जाय तो इसमें दोष धर्म का न होकर उसने धारण करने वाले मूर्ख पात्र का है । धर्म कभी असहिष्णुता अथवा संघर्ष नहीं सिराता वह तो असहिष्णुता और संघर्षों का मिटाने वाला एव सुख का कारण ही है । कारण काय का विरोधी नहीं होना जो कारण काय का विरोधी हो उसे कारण समझना या मानना ही भूल है । कदा भी है कि "धर्म सुखस्य हेतु हेतुन विरोधक स्वार्थस्य"

अर्थात्—धर्म सुख का ही कारण है । कारण कभी अपने स्वभाव का विरोधक नहीं हुआ करता ।

वस्तु स्वभाव ही धर्म—

वस्तु के स्वभाव का नाम ही धर्म है । जैसे अग्नि का धर्म उष्णता या दाह है । यदि अग्नि कइलाने वाली वस्तु से उष्णता या दाह निकल जाय तो उसका नाम अग्नि नहीं रह सकता । अग्नि का उष्णत्व ही लक्षण, धर्म या गुण तन्मभूत है । लक्षण अनात्मभूत भी होता है परन्तु वह वस्तु का धर्म नहीं होता । जैसे टोपी वाला आदमी । परन्तु टोपी आदमी का स्वभाव नहीं है । स्वभाव और धर्म एकार्थक शब्द हैं इसीलिए धर्म वस्तु स्वभावामक ही होता है, वह वस्तु से कभी भिन्न नहीं रह सकता । जो धर्म धर्मों से भिन्न हो जाय वह उम धर्मों का धर्म नहीं ।

आत्मनः नहुन से लोग कहते हैं कि पाप से घृणा करनी चाहिए, पारी से नहीं परन्तु यह बात 'यत्प्रकार विरुद्धता के कारण बननी नहीं। चोरी से घृणा करने वाले को चोर से घृणा करनी ही पड़ेगी। जो चोरी से घृणा करता रहे और चोर को छाती से लगाये तो यही माना जायगा कि इस व्यक्ति को चोरी से भी घृणा नहीं है। गुण से प्रेम तभी माना जा सकता है जब कि गुणी से प्रमोद भाव हो। गुणी को तो डरते मारते जाना और साथ में यह कहते जाना कि मेरा तो गुण से प्रेम है, एक प्रकार का प्रयत्न है। इसलिए यह कहना चाहे भावुक जनता के सामने आशा राख्य समझा जाता हो परन्तु मानुष्य और विश्व जनता पाप से घृणा और पारी से प्रेम की बात तो प्रयत्न और धर्म ही समझेगी। जो लोग इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करते हैं, उनका आचरित अभिप्राय मन्त्रोप होते हुए भी अपने आपको प्रेमभानन और विश्वसनीय सिद्ध करना मात्र होता है।

जो मानव का मानवता है वही उसका धर्म है परन्तु मानवता क्या है इसी पर आन विद्या या सवर्ष है। वास्तव में मानवता का अर्थ है अपने ही समान दूसरों को भी समझना, स्वयं जीना और दूसरों को जीने देना। जिसे लोग पशु कहा करते हैं, हम भी उसे पशु इमीलिए कहते हैं कि वह अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता। यदि मानव भी समानपरक का देश परक न होकर स्वपरक ही हो जाय तो चाहे उसका नाम

या मनुष्य हो परन्तु उसके कम पशु के समान ही होता है, उर्मी लिए उसमें पशु से विशेषता नहीं। मानव समाचरण या देश परक शास्त्र में तत्र बत मरुता है तत्र उसे परलोक और आत्मा नामक देह में भिन्न पदार्थ की सत्ता में विश्वास हो। समान और देह को मानव समान तत्र ही सीमित समझना भूल है। समार के प्रत्येक प्राणीमात्र को समान या देश समझना, मन्त्रा समान ज्ञान या ज्ञान ज्ञान है। आत्मा का मानव तो अपने अतिरिक्त किसी दूसरे का द्विज जानना ही नहीं, वह मानव दृष्ट्या से भी बड़ा मा इमलिए भयभीत है कि उसमें राज्य में शारीरिक ऋड मिलता है। अगर मानवदृष्ट्या में शारीरिक ऋड मिलने का भय न हो तो आत्मा का मानव कहताने राजा प्राणी अपने चरा में स्वयं के लिए अपने चरा में विरोधी मानव को भी घाम कृम का तरल मौत के घाट उतार दे क्या इमका नाम मानवता है ?

मानवता में परद्विमा को (चाहे वह छोटे से प्राणा की हो) र गान नहीं उसमें अमत्य चौय, अयभिचार और अति लोभ को स्थान नहीं। द्विमा अमत्य चौय, अयभिचारातिलोभ का एक दश त्याग मानवता और मत्र दश त्याग आत्मा मानवता है। मानवता मानव का धर्म है। मानवता शास्त्र सम्भृत भाग का है। 'मानवस्य धर्म मानवता यह इमका व्युत्पत्ति है। धर्मा में धम अलग हो पाय तो यह फिर धर्मा ही नहीं रह सकता।

रम का रूप तो यही है परन्तु लोभा न उसे विगाड लिया मात्र में मात्र को ही मान्य समझ बैठन का भूल जाना धारही

हैं। मानस को साध्य का रूप देना व्यावहारिक ज्ञान से अन्तर्भा है। पान्नु उमें ही तात्पर्य रूप मान लेना तो भगवद् ही ही जाता है। पूजा पाठादि स्वयं धर्म नहीं दिन्नु धर्म प साधन हैं। साम्प्रदायिकता भी धर्म का मान ही है या धर्म रूप साध्य क मित्र करने क लिय अनेक विभिन्न मनोनीत प्रकार हैं। उन विभिन्न प्रकारा या मनोनीत मानना का साध्य मान कर एवं उनका पारम्परिक विरोध का कारण मान साध्य से भा निरपत्तता कर लेना दश वा समाज म ल जाना है। धर्म निरपत्तता ही विदशा म घोर हिंसादि पाप का कारण है। प्रतिष्ठित मानस मूर्ती की तरह मान्य जाति एवं प्राणिया प सिध्यम मे धर्म निरपत्तता ही कारण है। आद रा भारत भा पारम्पर्य यातु मे ही प्रभावित है अतएव हमके मन प्राणिकान स धर्मसापत्तता हट गड है।

राजिनि का नीयन उर्वा मे धर्म का अलग रूप देने से यह नीयनया केवल गदिर और लोभायनिक बन जाती है और जव गेमा हाता है तो मानस ममानपरत या अशापरक न रह कर स्वार्थ परक बन जाता है और हमका परिग्राम समस्त अशा वा कटु भुगतता पड़ता है। वास्तव म मानस ही मानयता ही जो कि हिंसा अमृत्य चौथ व्यभिचारतिलोम के त्याग स्वरूप है मानवीय मस्कृति है। मानसा और मानवीय मस्कृति दोनों एक ही पदार्थ हैं। भारतेतर देशों मे अकर्म्यरूपा मानवीय परिणति न होने से भारतीय मस्कृति मदैव उन देशों से भिन्न रही है। अत स्वरूप

संस्कृति भारत में ही थी और बहुत कुछ चले जाने पर भी, एय रहेगी भी। इमीलिए प्रत्येक भारतीय को अपनी संस्कृति की माभिमान रक्षा करनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति का यह स्पन्द और विशद रूप तभी स्थिर और सुरक्षित रह सकता है जबकि भारतीय मानव में पारलौकिक निष्ठा और देह से प्रथक आत्मसत्ता में विश्वास हो इस विश्वास के बिना उक्त स्वरूप मान्यता अथवा माननीय संस्कृति या भारतीय संस्कृति नहीं हो सकती। पारलौकिक निष्ठा और देह से प्रथक आत्मसत्ता में विश्वास के बिना मानव कभी समानपरक या देशपरक नहीं हो सकता अतएव यह सिद्ध हो जाना है कि पारलौकिक निष्ठा और देह से पृथक आत्मसत्ता में विश्वास का नाम ही वास्तव में भारतीय संस्कृति है।

धर्म को वर्णों से पृथक् मानने का परिणाम —

धर्मों से धर्म को प्रथक मान बैठने का परिणाम ही ऐटोमिक बम, हाइड्रोजन बम सरीखे प्रबल संहारक शस्त्रों का निमाण होना और उनके द्वारा अनन्त प्राणियों का संहार होना है। हिंसा भूँठ, चोरी, व्यभिचार और अतिलोभ इनको केवल असामानिक तत्व मानना ही महान् भूल है। इनके केवल असामानिक तत्व मानते रहने से सामाजिक हानि लाभ की चिन्ता रहती है। जो स्थिर तथा विशेष उपादेय नहीं होती। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे सामाजिक चिन्ता नगण्य हो

जानी है। ये यदि अहिंसा सत्य आदि हमारा धर्म या समृद्धि के रूप में होते हैं तो हमें इनकी रक्षा की आन्तरिक चिन्ता रहेगी। हमारा पूजन महर्षियों ने तो यहाँ तक कहा है कि हमारा प्रत्येक लौकिक व्यवहार धर्म से समन्वित होना चाहिये। लौकिक व्यवहार का धर्म से समन्वय बैठ बिना अहिंसादि गुण जीवन चर्या में गतरते नहीं। जब प्रत्येक मानव की जीवनचर्या अहिंसा सत्यादि से समन्वित होकर चलती रहे तो ससार में उद्दी सघर्ष और क्लेश का नाम भी मुनाई न दे। याम्त्र म अहिंसा सत्यादि तत्त्व जीवनचर्या में श्रेष्ठ प्रोत्त होना चाहिये। मानव जगत् का प्रत्येक लौकिक व्यवहार अहिंसा सत्यादि से समन्वित हो जाय तो न तो इतने युद्धादि की आवश्यकता पड़े और न चोर दाचारी घूसवोरी आदि को ही प्रशय मिले।

आज जो भारत में चोर दाचारी और घूसवोरी आदि की शिंशायत है वह मन धर्मी को धर्म से प्रथक मान लेने का ही परिणाम है। बहुत से लोग घटों तक एकान्त में बैठकर भगवान् का भजन किया करते हैं। लोग भी उनको भक्त समझते हैं परन्तु जब उनके कर्म दग्गे जाते हैं तो उनसे अत्यन्त घृणा होती है क्योंकि वे निन्दनीय होते हैं। जिसका कारण यही है कि लोग ने भगवान् के नाम लेने या भजन करने को ही भ्रम समझ लिया है। वास्तव में भगवान् का नाम लेना मात्र धर्म नहीं है, वह धर्म का साधन तो हो सकता है परन्तु साध्यरूप धर्म नहीं। इसलिए हमारा पूजन महर्षियों ने कहा है कि आचार 'प्रथमो धर्म अथात्

सबसे प्रथम धर्म आचरण ही है। अहिंसा सत्यादि ही शुद्धाचरण हैं। हिंसा करने वाला भूठ बोलने वाला चोरी करने वाला, व्यवभिचारी तथा अतिलोभी होना ही दुराचारीपन है। यदि ये दुराचार नहीं तो फिर दुराचार और क्या होंगे ?

वास्तव में संस्कृति और धर्म में कोई अंतर नहीं। संस्कृति और सदाचार दोनों एकाधिक हैं। 'संस्कृति का अर्थ सम्यक् कृति है। मानव की सम्यक् कृति ही उसका धर्म है और वही उसकी करने पर धर्म और संस्कृति भी है। सूक्ष्म विचार और विवेचन संस्कृति विभिन्न पदांश नहीं।

पारचात्य दशा में संस्कृति शब्द का अर्थ कलचर किया जाकर उसे बाह्य आडम्बरों में घसीटा गया। या यों कहिये कि अंग्रेजी के कलचर शब्द का अर्थ 'संस्कृति कर्षे' भारतीय मानव गुमराह हो गया। इसी का फल है कि हमारे बड़े बड़े नेता भी आज संस्कृति शब्द का अर्थ न समझ कर पारचात्य दशा की नज़र करने में ही अपना सौभाग्य समझते हैं।

अथ शब्द से भिन्न नहीं होता। शब्दों में भी रूढ़ शब्द नहीं किन्तु यौगिक। यौगिक शब्द सदैव अर्थानुसारी और अर्थ सदैव यौगिक शब्दानुसारी ही होता है। 'कलचर शब्द हमारा नहीं यदि हमने इसका अनुवाद 'संस्कृति किया है तो हम कलचर के अर्थ पर नहीं किन्तु संस्कृति शब्द की उत्पत्ति और उसके अर्थ की ओर ही देखना पड़ेगा जब संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृति शब्द में बना है तो संस्कृति शब्द का अर्थ 'उत्तम कार्य यही ठहरता है। उत्तम कार्य और सदाचार में

अन्तर नहीं। सदाचार का नाम ही धर्म है इसलिए धर्म और संसृति में अन्तर नहीं।

हिंसा अहिंसा

हिंसा उच्चम काय नहीं। यदि हिंसा उच्चम काय है तो फोड़ हमारी हिंसा परना चाहता है तो यह उमता काय फिर क्या करा ? निरपराध की हिंसा तो मरथा ही बुरी है। सापराध की भी मरथा हिंसा तो बुरी ही है। यदि कोई पशु या मानव किसी का मारना है तो पशु म तो पशुता है ही परन्तु मानव म मानवता कहा रहा ? निम प्रकार किसी को मारने में उमने मानवता में हाथ रोया तो प्रतिहिंसा करने वाले ने मानवता का रक्षा कैसे की ? सापराध को अपराध की भारता और प्रशुन्ति से छुड़ाना मानव की मानवता है, नकि जानसे मार जानना। भूतपूय अनव दर्शी राया में बड़ में बड़ हत्यारे अपराधी को भा फामी पर नहीं लटकाया जाता था। पहल वहाँ मृत्यु दंड प्रचलित था जो कुछ अशो म मानवता का शोतर था। आज भारत में मरथा भारतीय राज्य हो जान पर भी मृत्यु दंड प्रचलित हो गया जो अमेजा के राज्य म भी प्रचलित न था। वास्तव म दसा नाय तो हम संसृति में बहुत दूर चल ना रह हैं और संसृति रक्षा का रटत लगाते जा रहे हैं जो हमारा चिन्ता छद्मपूय व्यवहार है ?

अत्रापि अमेज लोग पुरोक्त वास्तविक मानवता से बहुत दूर थे तथापि व विदेशी होने के कारण अपनी संसृति भारत में प्रचलित करने में डरते थे। वे सन् १८५७ के गन्द के इतिहास

के अभिज्ञान से भुक्तभोगी थे इसलिए उन्होंने भारत में मानवता के विरुद्ध प्रत्यक्ष संघर्ष मोल नहीं लिये । उन्होंने मद्रली उद्योग और मद्रली भक्षण के लिये प्रत्यक्ष पद्धति में भारतीया को कभी नहीं कहा । उन्होंने मास का उद्योग नहीं चलाया, न मास वाजार स्थापित कर उसकी रिपोर्ट निम्नली एन न माम स्वाने का सर्वसाधारण में प्रचार ही किया जैसा कि आज किया जा रहा है । भारत में अमजी राज्य होते हुए भी देशी राज्यों में कुत्तों आदि की हत्या नहीं होनी थी । और तो क्या ? अमानस्य पकाशी आदि अनेक तिप्रियों में जीव हिंसा बढ़ रहती थी । राजा लोग अनेक अमरा पर जीव हिंसा करने के फरमान भी जारी किया करते थे परन्तु भारत में भारतीयों का मजदूमुखी शासन होने पर भी पशुआ मद्रलियों को मारकर खाने का उपदेशा दश और प्रयोग किये जाकर जनता को प्रोत्साहित किया जाता है । घडे-घडे मद्रली उद्योग के केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं । बन्द आदि प्राणियों को भी मौत के घाट उतारा जा रहा है और भी अनेक संस्कृति विरोधी दुष्कृत कार्य हो रहे हैं । फिर भी संस्कृति रक्षा के लिए बड़े-बड़े सम्मेलन बुलाये जाकर भायुक्त जनता की आँखा में सरामर धूल भोंकी जा रहा है ।

सर्गीय गांधीजी अहिंसा का नारा लगाने थे । यह भी कहा जाता है कि अहिंसा के बज पर ही राज्य शासन मिला और भविष्य में भी अहिंसा को ही मुख्य स्थान दिया जायगा परन्तु आज स्वतंत्र भारत में भी पहले से अहिंसा का साम्राज्य

है। निदाने अंग्रेजी साम्राज्य में पशु कटते थे उममे कई गुने
 आन कट रहे हैं। मानव के प्राणा का भी आन कोड मृत्य नहीं
 है। जरा नरामी गत पर गोलियों चलाई जाकर मानवों को
 मौत के मुँह में धुसेड़ दिया जाता है। उन सर गारा और
 पटनाआ को देखकर तिररा हो यही कदना पडता है कि का
 ससृति और उमरी रक्षा के मुलाद नार लगाने हों परन्तु
 यह भी प्रिति नहीं कि वास्तव में ससृति है क्या चीन ?

सत्य-अमत्य

चीनन चर्या में सत्यता का व्यवहार भी वास्तविक
 मसृति है परन्तु मत्य कोसों दूर जा रहा है। कानूनी
 वृद्धि से तो सत्यता और भी अधिप चबती जा रही है।
 सिविल या मिमिनल मामले में नकील के पाम
 रूप ही दूसरा बन जाता है। यद्यपि वर्तमान
 सत्यता का पता लगाने के लिए कानून कर
 परन्तु अनेक युक्तियों और बुद्धि कारणों से
 का काम भी कानून बहुत अधिक करता है।
 कानून और न्याय में बड़ा अन्तर है। कानून
 के बाद तमाम लन दन गारिजुल मियाद है।
 न्याय की दृष्टि से तो नहीं हो सता।
 १०६५ दिन व उपर एक दिन चढ जाने
 आनरल के कानून की दृष्टि में अनुचित
 न्याय की दृष्टि से तो कदापि नहीं सता।

हुए भी जानते हुए भी आज कानूनी शिक्षण का प्रचार पर्याप्त मात्रा में बढ़ता जा रहा है और उसका रूप रूपा बनता जा रहा है कि मानव ममानतादी या देशधाना र बनकर व्यक्तिगी बनता जा रहा है यह व्यक्तिवाद ही हमें ससृति शून्यता की ओर ले जाने वाला कुनत्त्व है । परमान अदालतों और कानून काताआ की जो प्रणाली है उससे याय प्राप्त हो जाता है या नहीं, यह तो प्कान्त से नहीं कहा जा सकता परन्तु यह न्याय हो चाहे अन्याय ? दोना ही बहुत महगे पडते ह । कोर्ट पीस, घरीला का महनताना और निणय में समय का लम्बापन इतना भयकर है कि न्याय के लिए अणालत में गया हुआ व्यक्ति भी बरवान हो जाता है और यह तत्समय या आगे भी मारी ससृति भूल जाता है सत्यासत्य निणय प्रणाली में आई हुई इन दिक्कतों से या तो अन्याय अथवा अमसृति को चुप चाप महन कर लेना पडता है या न्याय नीति को तिलानलि के साथ-माथ उमे उरबाद हो जाता पडता है और यह पीडे अमसृत हो जाता है ।

चौर्य-अचौर्य

जीवन चया में अचौर्य कितना उतर रहा है इस बात का अनुमान तो सर्वत्र व्याप्त और निसकी शिषायत मभी को है, चोर बाजारी से ही लग जाता है चोर धानारी को प्रोत्साहन मिलता है घूसखोरी से, घूसखोरी आजकल इतनी बढ़ गई है

कि मरफार को मय म्मे दाने के लिए बानूनी कड़ाह को काम
 म लना ही अपराधों मे वृद्धि और तीव्रता को घोषित करता है ।
 आन हमार प्रत्येक व्यवहार मे चौय प्रयोग दरने मे आता है ।
 अमली मान म नकली भाल मिलाना कम तोलना नेन दन ने
 परिमाण मात्रता म अन्तर, घुटलेख क्रिया, चौयागतागन आदि
 अनेना काम का सम्बन्ध अप्रयत्त चौय से है । लोना ने समभ
 रक्या है कि ममार म चारा और अमत्य के रिना काम नहीं
 चलता । परन्तु यह धारणा गलत है । जब एर आदमी ऐसा
 करने म तात्कालिक प्रयत्त लाभ दूसर की अमारधानी मे
 उठा लेता है तब दूसर भी एसा करने लगते हैं और पीछे तो
 आरम्भ लोगा की यह धारणा भी बन जाती है परन्तु यह
 धारणा गलत और दश को नष्ट करने वाली है । वास्तव म
 लाभ मे कारण यह असत्य और चौय न होकर मानने वाले
 व्यति की मूर्खता है । यदि उममे म अमत्य और चौय को
 समभ लेने की बुद्धि और शक्ति हो तो उसे कभी लाभ नहीं
 मिल सकता ।

इन मय सूभ बातों के अनिरिक्त आन ममूचे देश म ही
 चारी बाकेजनी मूय हो रही है । एर तरफ तो ऐसी स्थिति है
 कि चिनके पास मचित धन है ये लोग इसे परोपकार मे अश
 मात्र भी लगाना नहीं चाहते और दूसरी ओर यह स्थिति है कि
 और और बाहू तो दिनानरु प्रवृत्ति से निदनाय हैं हा परन्तु

धनिक वर्ग अपने मन को आरक्षयता वाले पात्र में प्रतीर्ण न कर मचित ही रखें या वेवल अपने ही उपयोग में लें, यह भी कम निन्दनीय नहीं है। पात्र में त्याग और परिजना के साथ धन भोग करना मानव का सुलक्षण है परन्तु ऐसा न करने से आज देश दुर्दशाग्रस्त होता जाकर अपनी ससृति से शून्य होना जाना है।

जैसे एक जगह इकट्ठा हुआ खून महा रोग की गणना में आता है उसी प्रकार एक ही जगह धन का एकत्र हो जाना भी महान् सामाजिक और नैतिक अपराध है। जिस प्रकार शरीर में रक्त वृद्धि अनुचित नहीं उसी प्रकार धन वृद्धि भी अनुचित नहीं परन्तु जिस प्रकार बढा हुआ रून सारे शरीर में यथोचित परिमाणानुसार बँटता रहे तो वह शरीर स्वस्थ रहता है उसी प्रकार बढा हुआ धन भी प्राणियों में यथोचित पहुँचना ही चाहिए। जैसे एकत्र जमे हुए म्धिर के पिण्ड को आपरेशन द्वारा काटना पड़ता है उसी प्रकार एकत्र जमा किये हुए धन को लुटेर डाकू चोर या सरकार ले लेते हैं इसलिए उचित यही है कि एकत्रित धन का यथोचित अन्यान्य प्राणियों के हितार्थ प्रिनियोग किया जाय, यही हमारे देश की ससृति है परन्तु आज देश कहाँ और किधर जा रहा है ? इसका हमें पता नहीं। सरकार भी नये नये टैक्स लगाकर एक जो लगे हुए हैं उन्हें बढाकर कम आय नहीं कर रही है।

राजनीति को चिपटी न रहने देना । अर्थात् राजनीति के प्रवर्तक राजा या शासक को चाहिए कि वह किसी सम्प्रदाय विशेष का मानने वाला होते हुए भी न्यून शासन आदि में सबके साथ समान व्यवहार करे । यह पहले बतलाया जा चुका है कि किसी सम्प्रदाय विशेष का नाम धर्म नहीं, धर्म तो हिंसा भूँठ, चोरी आदि से बचाता है । सम्प्रदाय विशेष भी इन पापों में बचने में अपनी अपनी प्रणाली और पद्धति से साधन हो सकते हैं परन्तु स्वयं धर्म रूप साध्य नहीं । जब इन वास्तविक धर्मों अर्थात् हिंसा असत्य चोरी आदि के त्याग से भी राजनीति को प्रथक् माना गया तो ससार में पापों की वृद्धि होती चली गई । ब्रह्मचर्य भी मानव का धर्म है परन्तु ब्रह्मचर्य से विपरीत व्यवहार को निदर्शों में सामाजिक अपराध का थोड़ा बहुत रूप भले ही दिया हो परन्तु पाप नहीं माना गया ।

योगीजन वैसा ब्रह्मचर्य रखते हैं वैसा ब्रह्मचर्य सभी रखने लगे तो फिर योगीजन भी कैसे पैदा हों ? इसलिए वे तो ब्रह्मचर्य के आदर्श और आत्मसाधन के बड़े पुजारा होते हैं परन्तु वैसी अवस्था तक पहुँचने अथवा कम से कम उसे आदर्श मानकर उसका यशोगान करने के लिए एक देश ब्रह्मचर्य का पालन करना भी हमारा भारतीय सभ्यता है ।

कन्या का सम्बन्ध स्थिर होकर
होना एक देश ब्रह्मचर्य है ।
होकर परम धार्मिक बंधन ५

से सति लाभ तो हो जाता है पर तु वह अधामिन है इसलिए धार्मिक अर्थात् सासृतिर सति लाभ यथोचित विनाइ से ही होता है। अनर्गल मैथुन कर्म से रति लाभ हो जाता है परन्तु क्लिष्टता से, अक्लिष्टता मे नहीं। विनाइ से अक्लिष्ट रति लाभ होता है। केवल मैथुन से चारित्र्य और कुल की उन्नति नहीं होती परन्तु विनाइ से चारित्र्य लाभ के अनिश्चित संस्कार युक्त कुल की वृद्धि होती है। केवल मैथुन कर्म मे उपकारकों के प्रति घृणहता और सत्कारादि प्रकाशित करने के लिए सामाजिकता अथवा गाइस्व्य नहीं बनता किन्तु विनाइ मे भारी संस्कारा की स्थिति के लिए ऐसा रूप धन जाता है कि वह एक युगल जो कि जानीय संस्कार विशेष से धना है समुन्नत परिवार प्रणाली और विचार सरणि से उपकारकों के प्रति घृणहता प्रसारण और उनका अतिव्य भी करता रहता है जिससे वह ससृति की धारा अति छिन रूप से धनी रहती है।

विनाइ का क्षेत्र मानव के लिए गही होना चाहिए जिससे वह उद्देश्या की पूति हो परन्तु आनवल भारत में भी ऐसे बहुत लोग हो गये हैं जो जानवरों (बुत्तों घोड़ा आदि) का मैच मिलाने में तो गडी साग्रधानी रखते हैं परन्तु मानवा का जोड़ा मिलाने मे कोई विचार ही नहीं। इस बात को एक अमेरिज विद्वान् चारमिन ने कहा कि—

‘Man sees With Scrupulous care the character of his Horse, Cattle

Dogs, before he matches them, but when he comes to his own marriage, he rarely or never takes such care

अर्थात्—मनुष्य अपने घोड़ों, मरशियों और पुत्तों का जोड़ा मिलाने के पहले उनके स्वाभाविक गुण और नमल आदि अनेक बातों पर बड़ा विचार शक्ति से वाम लेता है परन्तु जब स्वयं या अपनी मतान के विवाह का अरसर आता है तो वह इन बातों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता ।

आज तो भारतीय संस्कृति की अपने को पुनारिज बतलाने वाली स्वयं कामेस अथवा उसकी सरदार ने 'स्पेशल विवाह' 'तलाक' 'उत्तराधिकार' आदि कानून बना दिये हैं जिसमें जाति धर्म और देश की पद्धत आदि के ममस्त प्रतिबंधों को जिनमें संस्कृति का तत्त्व स्प तर्निहित है हटा दिये गये हैं । इस कानून का आगर बेजल स्त्री पुरुष की मर्नी है ।

समस्त संस्कृति का मूल तत्त्व स्त्री और पुरुष की चर्चा पर अजलम्बित और आगरित है । यदि स्त्री और पुरुष के मिलने से पहले उनकी संस्कृति समान और आर्यत्व की पीपन और निर्वाहक है तो उनके सयोग से उत्पन्न होने वाली सतति भी वैसी ही होगी और यदि उनकी संस्कृति पारस्परिक विभिन्न और आर्यत्व नाराज है तो भारी सतति भी वैसी ही होगी । इस प्रकार संस्कृति की अविन्दिन और विच्छन्न परम्परा का मूल स्त्रोत स्त्री पुरुष के सयोग अथवा विवाह से चलता है । संस्कृति का मूल

स्रोत बुल परम्परा से है और कुल की उन्नता और नीचता का सम्बन्ध यनता है नारी से, क्योंकि पुरुष धीन रूप होता है और नारी क्षेत्र रूप। धीन तो यदि अयोग्य स्थान में डाला जायगा तो चितना धीन बनाया गया है उतना ही नष्ट होगा परन्तु अयोग्य धीन से क्षेत्र बहुत समय अथवा सदा के लिए भी विगाड़ भङ्गा है इसलिए क्षेत्र शुद्धि धनी रखने की बड़ी आवश्यकता है। समस्त भारतीय सभ्यति इस जतिकुल शुद्धि म, ही अर्तिर्निहित है परन्तु यह है कि स्वयं भारतीय सभ्यतियाँ और वे भी चिनरे हाथ में समस्त भारतीय शासन सत्ता का सूत्र और तन्त्र है पारशात्य चाफचिन्त्य में पड़कर स्त्री और पुरुष के समानाधिकार के नाम पर इस क्षेत्र शुद्धि धीज रक्षा को नष्ट भ्रष्ट कर भारत को अन्य विजातीय सभ्यति का कीतदास बनाते जा रहे हैं।

भारतीय नीतिशारों ने लिखा है कि—“वशात्रिशुद्धयर्थमनर्थ परिहारार्थम् स्त्रियो रक्ष्यन्ते, न भोगार्थम्।” भागर्थ—स्त्रियों की रक्षा वरा की विशुद्धि और आर्थ वे परिहार के लिए की जाती है, न कि भोग के लिए। (नीतिशास्त्रामृत)

महान् नीति शास्त्र के उपदेष्टा आचार्य गुरु ने भी कहा है कि—

वशास्य च विशुध्यर्थं तथानर्थक्षयाय च ।

रक्षितव्या स्त्रियो विज्ञाने भोगाय च केवलम् ॥

अर्थ—उपर के आशयवाला ही है।

यह तो है भारतीय नीतिनारों का मत, परंतु आज उसकी अनदेखना की जाकर नारी जाति को सर्वथा अरक्षित, उद्वेग और उद्वेग सल प्रदान में अहमहमिका से प्रगति दिखलाई जा रही है। जो भारतीय दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति के विनाश के ही चिह्न हैं, उत्थान और उन्नति के नहीं।

भारतीय नीतिशास्त्रों में पूर्वन महान् विद्वानों ने नारी जाति के लिए अधिक काम शास्त्र का ज्ञान तथा अभ्यास भी वर्जित ही ठहराया है और महिलाओं के कानशास्त्र के अधिक ज्ञान तथा अभ्यास को राजनारा तथा कुल नारा में ही कारण धतलाया है।

‘नारीय स्त्रियो व्युत्पादनीया स्वभावसुभगोऽपि शास्त्रोपदेशा
स्त्रीषु शस्त्रीषु वयोलन इव विपमता प्रतिपद्यते’ सोमदेवाचार्य—

अर्थ—स्त्रियों को काम शास्त्र की शिक्षा में अधिक प्रवीण और व्युत्पन्न नहीं करना चाहिए क्योंकि स्वभाव से भी कामशास्त्र का उत्तम ज्ञान स्त्रियों को छुरी में पड़े हुए पानी की थूँद के समान विपम घना देता है अर्थात् नष्ट कर देता है।

आज तो वे नमयुवक विनये हार्थ समूचे देश की उत्थान और पतन की समस्या को हल करने की यागडोर है पारचात्य दर्शा की नकल करते हुए स्त्रियों को निनञ्जना से साथ निरक्षरते हैं, उन्हें साथ लेजाकर भिनेमा दिखलाते हैं, उन्हें मोहक वेशभूषा पहनाते हैं, उन्हें विनलियाँ सी घना कर प्रदर्शन करते

हैं, इन सब बातों से यही प्रतीत होता है कि हमारे देश की सृष्टि नष्ट भ्रष्ट होती जा रही है और सृष्टि विनाश के साथ हम और हमारा देश भी अज्ञान गर्त की ओर जा रहे हैं।

भगवान् ऋषभदेव, भरत और भारत—

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि हमारे देश का जो नाम भारत है वह 'भरत चक्रवर्ती' से पड़ा है। भरत चक्रवर्ती भगवान् ऋषभदेव के मनसे जड़े पुत्र थे। भगवान् ऋषभदेव के पिता का नाम नाभि और माता का नाम मरुदेवी था। नाभि राजा मनु थे। मनु से ही मानव शास्त्र बना है। वैदिक धर्म में भगवान् ऋषभदेव को २४ अवतारों में से आठवाँ अवतार माना गया है। ऋषभदेव को उदों में भी बड़ी शक्ति से स्मरण किया गया है, जैसे —

अ होमुच ऋषभं यज्ञियाना

निरानन्त प्रथमधराणाम् ।

अपा न पात न पात मरिचिनादुवे

इन्द्रियेण इन्द्रिय दत्तमोज ।

अथर्ववेद का० १६-४२-४

अर्थान्—सम्पूर्ण पापों से मुक्त, अहिंसक प्रतियों के प्रथम राजा आदित्यस्वरूप श्री ऋषभ देव का मैं आह्वान करता हूँ। वे मुझे बुद्धि, इन्द्रियबल और आत्मबल प्रदान कर।

ऋग्वेद में भी भगवान् ऋषभदेव की स्तुति की गई है —

यह तो है भारतीय नीतिशास्त्रों का मत, परन्तु आन उमरी धरद्वलना की जाकर नारी जाति को सर्वथा थरचित, उदड और उदध खल वान मे अहमदुभिका मे प्रगति दिरख्लाह जा रही है । जो भारतीय इण्टिमोण से भारतीय सदृति के विनाश के ही चिह्न हैं उत्थान और उत्रति के नहीं ।

भारतीय नीतिशास्त्रों मे पूरन महान् विद्वानों ने नारी जाति के लिए अधिन काम शास्त्र का ज्ञान तथा अभ्यास भी वर्नित ही टहराया है और महिलाओं के वानशास्त्र के अधिक ज्ञान तथा अभ्यास को रान्यनारा तथा कुल नारा में ही कारण बतलाया है ।

‘ नारीर रित्रयो व्युत्पादनीया स्वभावसुभगोऽपि शास्त्रोपदेशा स्त्रीषु शस्त्रीषु बयोलाय इव त्रिषमता प्रतिपद्यते ’ सोमदेवाचार्य—

अर्थ—रित्रियों को काम शास्त्र की शिक्षा में अधिक प्रबोण और व्युत्पन्न नहीं करना चाहिए क्योंकि स्वभाव से भी वामशास्त्र का उत्तम ज्ञान रित्रियों को छुरी में पड़े हुए पानी की धूँद के समान त्रिषम घना देता है अर्थात् नष्ट कर देता है ।

आन तो वे नरयुक्त नितके हाथां समूचे देश की उत्थान और पतन की समस्या को हल करने की बागडोर है पारचात्य देशों की नरल करते हुए रित्रियों को निर्नञ्जता से साथ लिए फिरते हैं, उन्हें साथ लेनाकर भिनेमा दिग्बलाने हैं, उन्हें मोडक वेशभूषा पहनाते हैं, उन्हें निलियाँ सी घना कर प्रदर्शन करते

है, इन सब बातों से यही प्रतीत होता है कि हमारा दश की सस्कृति नष्ट भ्रष्ट होती जा रही है और सस्कृति विनाश के साथ हम और हमारा दश भी अगार गते की ओर जा रहे हैं।

भगवान् ऋषभदेव, भगवत् और भारत—

यह घान निरिन्द्र सिद्ध है कि हमारे देश का जो नाम भारत है वह 'भरत' अव्यवर्त्ती से पडा है। भरत चन्द्रवर्त्ती भगवान् ऋषभदेव के सबसे बड़े पुत्र थे। भगवान् ऋषभदेव के पिता का नाम नाभि और माता का नाम मरुदेवी था। नाभि राजा मनु थे। मनु से ही मानव शब्द पडा है। वैदिक धर्म में भगवान् ऋषभदेव को २५ अवतारों में से आठवाँ अवतार माना गया है। ऋषभदेव को उदा म भी उड़ी शक्ति से स्मरण किया गया है, जैसे—

अ होमुच ऋषभं यज्ञिमाना

निराजन्त प्रथमधराणाम् ।

अपा न पात न पात मरिचनादुवे

इ द्विनेण इ द्विय दत्तमोत ।

अथर्ववेद का० १६-१०-४

अर्थात्—सम्पूर्ण पापों से मुक्त, अहिंसक प्रतियों के प्रथम राजा, आदित्यस्वरूप श्री ऋषभ देव का मैं आह्वान करता हूँ। वे मुझे बुद्धि, इन्द्रियबल और आत्मबल प्रदान कर।

ऋग्वेद में भी भगवान् ऋषभदेव की स्तुति की गई है—

अनयाण ऋषभ मद्रिच्छिद् वृहस्पतिं

वर्षया नव्यमर्के

ऋ म १ मू १६० मं १

अर्थत्—मिष्टभारी, क्षाती, स्तुतियोग्य ऋषभ को पूजा सायक मंत्रा द्वारा बधिन करो व स्तोत्रा को नहीं छोड़ते ।

भगवान् ऋषभदेव के पहले भोग भूमि थी । सभी इस प्रकार के कल्पवृक्षा से समस्त प्रकार यथेष्ट मामग्री प्राप्त करते थे, भगवान् ऋषभदेव ने ही समस्त कर्मा की स्थापना की । यही बात वैदिक धर्म के त्रिषु पुराण में भी मिली है ।

“शास्त्रों में केवल भारतवर्ष को ही कर्म भूमि माना गया है याकी सब देस केवल भोग भूमि है । भारत में जन्म लेने के लिए देवता भी तरसने हैं” ।

गणराज मिश्र एम ए द्वारा लिखित भारतवर्ष
का इतिहास प्रष्ठ ६

कुछ लोगों का कहना है कि शंकुला और दुष्यन्त के पुत्र भरत से इस देस का नाम भरत पडा परन्तु यह बात ऐतिहासिक दृष्टि तथा वेद पुराण और भागवत में भी सिद्ध नहीं होती भागवत तथा अनेक पुराणों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत से ही इस देस का नाम भारत पडा है ।

श्री भागवत के पाचरें स्कथ अध्याय २६ में ऋषभदेव का वणन इस प्रकार आया है कि “तत्र ब्रह्मानी ने यह

देखा कि मनुष्य मगगा में वृद्धि नहीं हो रही है तो उन्होंने स्वयं
 मनु और मत्वरूप को अपन लिया निजमे प्रियवत नामक पुत्र
 हुआ। नामि ने मन्देजी के साथ मित्राह किया और अपभदेय
 इनके पुत्र हुए। अपभदेय ने जयन्ती नामक कन्या से मित्राह
 किया इनके सौ पुत्र हुये। सबसे बड़े पुत्र भरत थे। अपभदेय
 ने बड़े पुत्र भरत को राज्य देकर सन्यास ले लिया। अपभदेय नग्न
 निगमर वेष में रहने लगे। उन पर लोग मल मूत्रादि तक फेंक
 देते थे परन्तु वे इन उपमगा का ध्यान नहीं करते थे। उनका
 क्रिया-कर्म बहुत कठिन हो गया था। शरीरान्त्रिक छोड़ कर
 उन्होंने 'आत्मर' धर्म ले लिया था। इस प्रकार वैश्वपति
 भगवान् अपभदेय सदैव परमानन्द का अनुभव करते हुए काम
 धर्म छुटकर आदि देशों में गए और छुटकाबल परत के उपदेशों
 में पागल की तरह नग्न होकर मिचरने लगे और वहीं माता की
 रगत में आग लगा जाने पर भस्म हो गये। आगे भागवतकार
 लिखते हैं कि भगवान् अपभदेय के उपदेश को
 सुनकर अहन् नाम का राजा अपने धर्म को छोड़कर
 अपने आर्त धर्म (जैन धर्म) का उपदेश करगा
 जिससे लोग वे विरुद्ध आचरण करेंगे। यह अपभान-
 तार रचोगुण से ब्रह्म लोगों को वैश्वपति सिद्धलाने के
 लिए हुआ।'

श्री मद्भागवत में आये इस प्रकरण में यह स्पष्ट है कि
 भगवान् अपभदेय आर्त धर्म जैन धर्म के अनुयायी थे और वे

ही जैनधर्म के सस्थापक थे। भरत उनके पुत्र थे इसलिए व भी जैन हो थे। इसलिए यह बात सिद्ध होती है कि भरत के नाम से चल भारत देश की मूल सृष्टि सर्वथा जैनधर्म ही थी। पीढ़ लोगो के स्वार्थ में भारत की मूल सृष्टि में हिंसा की भावना और प्रवृत्ति आ गई हो, यह दूसरी बात तथा विकास है। धार्मिक भारत की मुख्य और मूल सृष्टि तो जैनत्व ही थी।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने सभी पुत्रों को मन्यास धारण करते समय जो उपदेश दिया था वह सब भी वही उपदेश है जो जैन धर्म में वर्णित है और उपदेश में यह भी वर्णित है कि 'हे पुत्रो! समस्त तस और स्वार्थ जीवों को मर तथा अपने समान समझने की भावना तथा प्रवृत्ति रखना योग्य है'। इस उपदेश से स्पष्ट होता है कि किसी जीव को सताता वर भी नहीं चाहिये।

श्री पंडित गंगाशंकर मिश्र एम० ए० अपने 'भारतर्षे का इतिहास नामक पुस्तक के ५५ वें पृष्ठ पर लिखते हैं कि 'भारत में ऋषभदेव की कथा आई है, निम्नमें यह बतलाया गया है कि उनका जटिल अरधूत वेप से मोहित होकर आर्हत अर्थात् जैन सम्प्रदाय चला। जनों के यहाँ महावीर के तीर्थंकर माने गए हैं निम्नमें एक ऋषभदेव के कथा

आता ही है इस तथ्य से उनके पुत्र भरत भी पैदा ही थे।
 पैदा होने की मुग्य वस्तु अहिमा है इसलिए भारत की मस्तिष्क
 अहिमा के होने में रत्ती भर भी मद्दह नहीं है।

श्री मद्रभाग्यत से ही यह बात सिद्ध नहीं होनी कि भगवान्
 ऋषभदेव के पुत्र ही भरत थे किन्तु अन्य वैदिक पुराणा में भी
 यह बात स्पष्ट सिद्ध होता है। उन पुराणा के उद्धरण भी
 मद्रभाग्यत की जानकारी के लिए नागे दिये जाते हैं —

नाभिर्मरुदेव्या पुत्रमचनयन्पभनामानं तस्य भरतो पुत्रश्च
 तावदमत्र तस्य भरतस्य पिता ऋषभ हमात्रेदक्षिण यय
 महतु भारत नाम शशास ।

थराह पुराण अध्याय ७४

अथ—नाभि ने मरुदेवी में ऋषभ नामक पुत्र को पैदा किया
 उस ऋषभ के सबसे बड़ा पुत्र भरत था, भरत के पिता ऋषभ
 ने हिमानय के दक्षिण में भारतवर्ष पर शासन किया।

नाभिस्त्वचनया पुत्र मरुदेव्या महानुति ।
 ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठं गर्भक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥ ५० ॥
 ऋषभाद्भरतो जज्ञे धीर पुत्रसताम्रन ।
 सो ऽभिपित्र्यापि भरत पुत्र प्राणाय
 मास्थित ॥ ५१ ॥

हिमाद्रि दक्षिण यय भरताय न्यवेदयन् ।
 वस्माद्धि भारतं यय तस्य नाम्ना त्रिदुर्बुधा ॥ ५२ ॥
 (वायु महापुराण पर्व अ १३)

भाशर-प्रत्यक्ष कानिमान नाभि ने समस्त क्षत्रियों के पूर्ण और राज्यों में श्रेष्ठ ऋषभ पुत्र को उत्पन्न किया। उस ऋषभ ने भी अपने सौ पुत्रों में सबसे बड़ा भरत को राज्य देकर सातु दीक्षा धारण करली। भरत को हिम नामक दक्षिण वर्ष दिया जिसी से अथत् भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है।

नाभेर्निसग वक्ष्यामे हिमाकेभिस्त्रियोरित ।
 नाभि स्त्रियनय पुत्र मरुतेया महारवि ॥१६॥
 ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूजितम् ।
 ऋग्भाद्रभरतो जज्ञे तार पुत्रशतानन ॥२०॥
 सोऽभिषिच्यापि ऋषभो भरत पुत्रस्तल्ल ।
 ज्ञानपैराग्यमात्रित्य तित्वेन्द्रियमक्षोरगान् ॥२१॥
 नग्नो जटी निराहारो चौरथानमनोऽहि स ।
 सर्वात्मनात्मनि स्थाय परमात्मानमीश्वरम् ॥२२॥
 निरागस्त्यन्त सन्नेह शैवमार पर पन्म् ।
 हिमाद्रेःक्षिण्य तप भरताय न्ययन्त्यन् ॥२३॥
 तस्माद्धि भारतवर तस्य नाम्ना त्रिदुर्बुधा ।

लिंग पुराण अध्याय ४७

अर्थ— 'अब नाभि के वंश का वर्णन करूँगा। महाबुद्धि नाभि ने मरुदेशी में समस्त राज्यों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण क्षत्रियों द्वारा पूजित ऋषभ को उत्पन्न किया। ऋषभ के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा भरत उत्पन्न हुआ। पुत्र प्रेमी ऋषभ ने भरत का राज्याभिषेक

उन भरत से चला भारतवर्ष भी नैन ही होना चाहिए । इसीलि
भारत की मुख्य ससृष्टि अहिमा अर्थात् नैनत्नपूर्ण ही मि
होती है ।

नाभे पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाभरतोऽभरत् ।

तस्य नाम्नात्विं वष भारत चेति कीर्त्यते ॥५७॥

माहेन्द्रराजटीय कौमार स्वयं अ० ३७

अर्थ—नाभि का पुत्र ऋषभ, ऋषभ से भरत हुआ अं
मी के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ है ।

आमीत्पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपति ।

आर्षभो यस्य नाम्नेन भारतं स्वयं जयते ॥५८॥

स राजा प्राप्तराज्यस्तु पितृपौत्रा महाकमान् ।

पालयामास धर्मेण पितृवद्र जयन् प्रजा ॥६॥

(नारद पुराण पूर्व मंड अ० ४८)

भाष्य—पहले ऋषभ के पुत्र मुनियों में श्रेष्ठ भरत नाम
का राजा हुआ जिमी के नाम से इस भूखण्ड का नाम भारत
है । उस पर राजा ने वंश परम्परा से राज्य प्राप्त कर पिता
के समान ही धर्म से प्रजा का पालन किया ।

तपुत्रस्तु तदा नाभिनाम्ना लोहसुगारह ।

तेनाऽपि च तथा राज्यं पितृवत्परिपालितम् ॥

तस्य पुत्रस्तथा जाता ऋषभाणां मुनीश्वरा ।

तस्य पुत्रस्तत आमी इषभस्य महारमन ॥

सर्वेषां चैव पुत्राणां ज्येष्ठो भरत एव च ।

तत्रयोगीन्द्रता प्राप्ता नीतरागास्तथाऽभवत् ॥

ननुम्य तु पिशात तैः तु महामन ।
 पश्यान्निस्सतो जाता कर्ममाग परायण ॥
 द्वात्रयाणां यथा कर्म कृत्वा मोक्षपरायणा ।
 अपभरचोरानाम् ? हिताय ऋषिमत्तमा ॥
 मन्त्रिन् कृपयामास नरा यपि हिताय च ।
 तत्रापि भरते ज्येष्ठे त्वऽस्मिन् रजहणीयके ।
 तत्राम्ना चैव विख्यात स्युः च भारत तदा ।
 अमरा जन्म वैच्छन्ति सर्वे कर्मसुव्यायहम् ॥

शिव पुराण अध्याय ५१

भाष्य—उमके पुत्र नाभि ने जो कि लोह द्वितीय या
 अपन पिता के समान ही राज्य का पालन किया। उम नाभि के
 ऋषभ आदि जो मुनीवर होगये थे पुत्र हुए। उम ऋषभ
 महाम्ना के १०० पुत्र हुए जिनमे सत्रमे बडा भरत या जनमौ
 पुरा म ६ धातराजा बन गये। ८२ कम माग म तत्पर द्योते हुए
 पीढ़े मोक्ष परायण हो गये। धारी जो रह गये उनके नाम पर
 मण्ड ऋषभ देव न बनाय। भरत को जो मण्ड दिया उमी का
 नाम भारतमण्ड हुआ। यह भारतमण्ड मत्र मण्डा मे श्रेष्ठ है।
 यहा जन्म लेने के लिए देव भी तरसत है। यह भारत भूमि ही
 समस्त कर्मा की भूमि है और सुगन्ध है। शिव पुराण मे एक
 जगह यह भी आया है कि—

इयं प्रभात ऋषभोत्पत्तार शिवस्य मे ।

सता गतिर्दानव धुर्नयम कथितस्त्वय ॥

अथात्—शिवजी कहते हैं कि ऐसे प्रभाव घाने ऋषभदेव मेर ही अवतार हैं । सत्पुरुषों की गति उनसे ही होती है और व दीनवबु हैं । ये मेरे नये अवतार हैं ।

जो निष्णु उपासन है व तो त्रैलोक्यी पूजा करते ही हैं जिसमें मन्त्र मासादि क उपयोग नहीं होता परन्तु शिवजी स्वयं अपना ही अवतार वन ऋषभदेव को मान रहे हैं तो शिवोपासकों का शक्तों को भी हिंसा नहीं करनी चाहिए परन्तु जो शाक्त लोग हिंसा की पुष्टि करते हैं या हिंसा करते हैं उसमें केवल स्वार्थ ही कारण है । सत्यता का अर्थ जरा सा भी नहीं ।

इसी प्रकार ब्रह्मांड पुराण, कूर्म पुराण, आग्नेय पुराण आदि सभी पुराणों में भारत को भगवान् ऋषभ देव का पुत्र बतला कर उहाँ के नाम से देश का नाम भारत बतलाया है । भगवान् ऋषभदेव जैन थे इसमें भी सन्देह नहीं तो फिर भारत की मूल सृष्टि अहिंसा ही होती है ।

हमारी वर्तमान सरकार ने भी हमारे देश का नाम हिन्दुस्तान आश्रयत, उरिडिया आदि न मानकर सरकारी तौर पर 'भारत' ही माना है । सरकार ने जो इस अपने देश का नाम भारत रखा है जो बहुत ही प्रशंसनीय और न्यायसंगत कार्य किया है जिसके लिए वह अभिनन्दनीय है । इसके अतिरिक्त भारत के धर्म में अशोकचक्र का चिह्न रखा गया है । अशोक, मायें सम्राट चन्द्रगुप्त का पौत्र था । चन्द्रगुप्त जैन ही नहीं था किन्तु उसने जिनदीक्षा भी धारण की थी, जिसे ऐतिहासिक विद्वान्

निस्कोच मानते हैं । जन्म चन्द्रगुप्त मौर्य था तो उसका पौत्र अशोक भी जैन ही था बुद्ध ऐतिहासिक लोगो का मत है कि अशोक पहले जैन अथवा था परन्तु पीछे बौद्ध हो गया था । यदि उन विद्वानों के मन्तोप के लिए अशोक को जैन होते हुए भी उनके सतोपार्थ बौद्ध भी मान लिया जाय तो बौद्ध धर्म भी अहिंसा का ही उपासक है और उसकी मूल सृष्टि भी अहिंसा ही है ।

दुष्यन्त पुत्र भरत मे, भारत नहीं

उत्तर प्रदेश राज्य के वन विभाग के उप मंत्री श्री जगमोहन जी नेगी का कहना है कि राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत पडा है । भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से नहीं । श्री नेगी के इस मत का खंडन दैनिक सन्मार्ग के श्री सपादक और सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् श्री प० गगाराकरजी मिश्र एम० ए० बनारस ने किया है जो सन्मार्ग और सिद्धान्त मे प्रशशित हुआ है । श्री मिश्रजी का लिखना है कि ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का नाम भारत पड़ने मे श्रीमद्भागवत तथा अनेकों पुराणा के बचन आधार भूत है और दुष्यन्त पुत्र भरत के नाम से भारत मानने में कोरी कल्पना है । शास्त्रागर के आगे कोरी कल्पनाओं का कोई मूल्य नहीं ठहरता ।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् अनेक पुरातत्व संबंधी पुस्तकों के

लेखक, वाशी इंडोलोजी विभाग के मुख्य कार्यकर्ता श्री० डा० वासुदेवशरणजी अमराल की भी पहले यही कल्पना थी कि दुष्यन्त पुत्र भरत के नाम से ही भारत पड़ा है परन्तु आपको अपनी यह कल्पना भ्राति मूलक और अशुद्ध जची फलत उस भ्राति मूलक कल्पना के विरोध में अपना एक लेख 'सिद्धान्त पश्चिम पत्र बनारस के १० वें वर्ष के २४ वें अंक में ता० (३-५-५६) में प्रकाशित कराया है जिसे ज्यों वा त्यों प्रकाशित किया जाता है—

'सिद्धान्त के पिछले अंकों में 'भरत और भारत शीर्षक से श्री गङ्गाराङ्गरजी मिश्र ने बहुत ही उपादेय और प्रामाणिक टिप्पणी लिखी है । उमका अभिप्राय यह है कि 'पुराणों की साक्षी के अनुसार भारतवर्ष का नाम पहिले 'अननाभर्ष्य था और बाद में अपभ्रंश भरत के नाम से यह 'भारतवर्ष' कहलाया । श्री मिश्रजी ने इसी प्रसङ्ग में यह लिखा है कि 'ऐतिहासिक शोध करने वाले कई विद्वानों ने महाराज दुष्यन्त के पुत्र भरत से भारत या भारत वर्ष नाम की उत्पत्ति मानी है, जो ग्रन्थों से प्रमाणित नहीं और इसलिए अशुद्ध है ।

इस सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि 'मिश्रजी का कथन सत्य है । दौष्यन्त भरत के नाम से भारतवर्ष नाम की उत्पत्ति 'महाभारत के कुछ प्रमाणों के अनुसार मैंने 'भारत की मौलिक कल्पना ग्रन्थ में सुभायी, पर मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि 'मिश्रजी का पक्ष सत्य है और यह मेरी भ्रान्ति थी जो

भागवत ११७ ६ के प्रमाण को (चेपा अनु महायोगी भरतो ज्येष्ठ
श्रेष्ठगुरा आमीन् येनेदं वर्षं भारत भिति व्यपदिशन्ति) दौष्यन्ति
भरतपरक समक कर 'भारत की मौलिक गणना पृ० २७ की
टिप्पणी में वैसा लिख दिया। धरुत भागवत का प्रमाण
शुभपुत्र भरत के लिए ही है।

इसका स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि जहाँ तक भारतवर्ष इस
नाम का सम्बन्ध है, यह पुराणों की भाष्यता के अनुसार
शुभपुत्र महायोगी से भरत से ही सम्प्रतिष्ठित था। दौष्यन्ति
भरत उसके बहुत पीछे हुए और वे चन्द्रवती साम्भौष सम्राट्
के। इनके नाम से भरत कुल कहलाये। इसी भारत कुल में
कौरव पाण्डव हुए भरताद् भारती कीन्ति एनेदं भारत कुलम्।
अपरयेच पूर्वे च भारता इति विश्रुता (आदिपर्व, पूना ६६।४६)

'वायुपुराण' में निम्नलिखित उल्लेख आया है— शकुन्तलाया
भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् (वायु ६६।१३४)। इससे
यह ध्याति हो जानी है कि शकुन्तला पुत्र भरत के नाम से हुआ,
किन्तु यहाँ 'भरत कुल का विशेषण है, जैसा कि उपर
'महाभारत' में आया है। उस 'वायुपुराण' में ही अन्यत्र
शुभपुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष शक्य की व्युत्पत्ति मानी
गयी है— शुभभाद्रभरतो जज्ञे वीर पुत्रशान्धन । सोऽभिपि-
च्याथ भरत पुत्र प्रात्रायमास्थित ॥ हिमाल्य दक्षिण वर्षं भरताय
न्यवेदयत् । तस्माद् तद् भारत वर्षं तस्य नाम
(वायु० ३३ ५१ ५२) ।

इससे ज्ञात होता है कि मेरु के दक्षिण में स्थित प्रदेश पहले हिमवान्‌वर्ष कहलाता था, वही ऋषभपुत्र भरत के नाम से सम्बन्धित होकर भारतवर्ष कहलाया । पुराणों की यह सच्ची स्पष्ट है और मान्य है । मैं श्री मिश्रजी का आभारी हूँ कि उनके कारण मुझे इस स्पष्टीकरण का अवसर प्राप्त हुआ ।

इसके अतिरिक्त पूना के डाक्टर आर डी करमाजर वड भारी सरद्वनज्ञ, साहित्यज्ञ और पुरातन्त्र वंत्ता सुप्रसिद्ध विद्वान् है । आपने पर्याप्त अनुसंधान के साथ एनल्स ऑफ भाडारकर औरियट रिमर्च इन्स्टीट्यूट के १९५५ के अंक में हिन्दुस्थान का नाम भारत कैसे पडा, इस विषय पर एक लेख लिखा है, जिसका सारांश इस प्रकार है —

हिन्दुस्थान का भारत यह नाम शत्रुन्तला व दुष्यत के पुत्र भरत से पडा हुआ है ऐसा माना जाता है । परन्तु प्राचीन वाङ्मय में, 'पुराण प्रमाण ग्रन्थ है, इन पुराणों में यह बात देखने में नहीं आती है । ६० मन् की छठी शताब्दी में वाण ने कादम्बरी लिखी । उसमें उन्होंने हेमकूट पर्वत प्रदेश का वर्णन करते हुए भारतवर्ष ऐसा नाम लिखा है । परिशिष्यनों ने सिंधु नदी के पास के लोगों को हिन्दू ऐसा उल्लेख किया है । ग्रीक लोक सिंधु नदी को इंदू कहते हैं ।

सत्र पुराणा का काल करीब ६ठी शताब्दी है । सत्र पुराणों में एक समान बात आती है सिर्फ महाभारतपुराण में इस देश को पुत्र भरत से भारत नाम पडा ऐसा मिलता है । वासुपुराण,

मत्स्यपुराण व मारुण्डेय पुराण में दूसरा ही वर्णन है। इन पुराणों में मूत्रिभाग का स्पष्ट वर्णन मिलता है। तत्कालीन स्थानों के ६ विभाग बताये गये हैं। उनमें नयाँ 'भरतक्षेत्र' है। जिसकी मयादा दक्षिण में कयाकुमारी तत्र व उत्तर में किरान पप्रतश्रेणी गगोत्तर तक है। ऐसा मत्स्यपुराण अध्याय ११४ १८ १५ में भारत का उत्तर मनस्य द्वीप ऐसा किया है। एशिया खण्ड के पूर्वांश को 'जम्बूद्वीप' ऐसी सजा पुराणों में दी हुई है। मारुण्डेय पुराण में प्रियव्रत मज्जने अग्निधराने जम्बूद्वीप दिया ऐसा उल्लेख है। अग्निधरका पुत्र नाभिर्धोर नाभिका पुत्र ऋषभ। यही ऋषभनाथ जैनों के प्रथम तीर्थ वर हैं। 'हिम' नामक दक्षिण प्रदेश का राज्य ऋषभराजा ने अपने पुत्र भरत को दिया था। भरत इस प्रदेश के चक्रवर्ती थे। हमसे इस प्रदेश को 'भारत' यह नाम दिया गया। भागवत पुराण व अग्नि पुराण में भी यही कथन है।

इन्होंने एक बार पर्यन्त (वृष्टि) अटकाई थी तब अपने योगिक सामर्थ्य से ऋषभ ने पृथ्वी पर पर्यन्त वृष्टि की थी ऐसा उल्लेख भागवत पुराण में मिलता है। अतः में श्रीयुक्त करमार वर लिखते हैं कि—

- १—मनु के वंश के वासती स्थान का नाम मानद्वीप पडा।
- २—हिमाचल की दूसरी ओर के वस्ती का नाम 'अनजान' पडा।
- ३—मानव प्रदेश को अजानगी अथवा अजान नाम दिया गया।

४—मानव र्ष का उत्तर विनाश जो हिमाचल प्रदेश है उसको हिमवर्ष नाम दिया गया जो सत्ताधारी था।

५—मनु पुत्र ऋषभ ने मेहिक जयभगुरतन जानकर भरत का राज्याभिषेक कर दीक्षा लेली। भरत ने शासत्य पूर्वक अने-वर्ष राज्य किया अतः उसका नाम भारतवर्ष पड़ गया। वस्तुतः भारत का ऋषभवर्ष नाम पड़ना था, लेकिन ऋषभ को यह स्वीकार नहीं था। ऋषभवैशो के प्रथम तीर्थकर हैं। जैना की इस महान् विमूर्ति क नाम से हिन्दुस्तान का भारतवर्ष नाम पडा है यह निर्विवाद है।

६—जैन चक्रवर्ती भरत को यह मिला हुआ उड़प्यन कुण्डल को रचिकर न हुआ अतः उठोने अश्रमेघ यह किये तथा जो चक्रवर्ती था ऐसे दुष्यत पुत्र भरत से नाम पडा ऐसा असत्य प्रचार किया गया। दूसरे पुगणों मे यह धान मिलती ही नहीं है।

यहुन पुराण। म तो भरतन भारत यह नाम ऋषभ तीर्थकर के पुत्र भरत से पडा है। ऐसा स्पष्ट कथन है।"

इमसे यह सिद्ध है कि भारतवर्ष के मूल अधिकारी जैन हैं।

मस्कृति और सभ्यता

अमेजी भाषा क कलचर (Culture) शब्द का अनुवाद यदि सरलतया हिन्दी क शब्द म हो सकता है तो 'सभ्यता' हो सकता है। मस्कृति शब्द का अनुवाद Culture तो किसी भी हालत में नहीं हो सकता। भारतीय धोलचाल, गान पान,

वेपथूया, नृत्यगान, रहन महन आदि सब भारतीय सभ्यता है, भारतीय ससृति नहीं। आजकल इस सभ्यता को ही ससृति का रूप दिया जा रहा है और ससृति के मूल तत्व और अर्थ को भुलाया जा रहा है।

सभ्यता देश वात्तादि भेद से बदलती रहती है जैम यवन राज्य म घोलचाल मे उर्दू फारसी अरबी के शब्दा का प्रयोग अधिक होता था। इसी प्रकार वेपथूया आदि भी दूसरी तरह की रही। अमेजी राज्य में उसमे कुछ परिवर्तन हुआ तो फार्से राज्य म भी कुछ परिवर्तन हुआ तथा आगे होगा। सभी देश कला/भेद से भी वेपथूया आदि मे परिवर्तन हो जाता है जैसे गर्मी की ऋतु मे मलमल का कपडा पहना जाता है तो सर्द ऋतु में गर्म कपड़े परंतु ऐसा काल के भेद म ससृति, सस्मार या इनके अपर नाम धर्म मे परिवर्तन नहीं होता। ससृति मे परिवर्तन अस्वाभाविक है और ससृति के प्रभाव के कारण हो भी जाय तो मूलनारा का भेद ही हो जाता है। और भय ही नहीं किंतु मानना है कि ससृति ही हो जाता है।

स्वतंत्रता का उद्देश्य अपनी ससृति ही का रक्षण है। केवल खाने पीने मौन मने आन के लिए किसी देश के प्रतिबंध के अभाव को ही स्वतंत्रता मानना नहीं है। यह लोकायतिक स्वतंत्रता तो सर्वथा अस्वाभाविक है। यवनराज्य और अमेजी राज्य में ससृति ही हो जाता है।

की स्वतंत्रता में क्या बाधा थी ? ये मन चीजें तो उम्र समय भी "पल" ध होती थीं परन्तु उन राज्या में यही बाधा थी कि कि हमारी मसूहति सुरक्षित नहीं थी और वह नष्ट होती जा रही थी इसलिए हमें स्वतंत्रता अपहिन थी। खेद यह है कि परकीय प्रतिबंध हट जाने पर भी हमारी ससूहति उन राज्या से भी शत गुण मात्रा में अमुरक्षित और नष्ट भ्रष्ट होती जा रही है ।

अहिंसा के नार जरूर लगते हैं परन्तु हिंसा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। भूँठ का भी फोर्ड टिकाना नहीं, और तो क्या ? आषकल भूँठ और दभ फो ही राजनीते में विशेष वना समझी जाती है। असभ्य चोरियाँ तो चल ही रही थीं किन्तु सभ्य चोरियों में भी आशानीत उनति और प्रगति हुई है व्यभिचार का भी अनेक सभ्य और सवटित प्रफारा से बोलबाला है तो व्यक्तिगत बड़े वेग से प्रगति कर रहा है ।

कहा जाता है कि भारत प्रगति कर रहा है। समन है कि वह प्रगति मानव के भौतिक जीवन के साधनों में हुई हो परन्तु मानव का आध्यात्मिक जीवन तो प्रिनारा की थोर ही प्रगति शील है। यदि भौतिक जीवन के साधनों में परतोप न्याय से प्रगति मान भी ली जाय ता ऐसी प्रगति से देश सुखी और समृद्ध नहीं हो सकता जब तक कि उसका नैतिक स्तर अथवा आध्यात्मिक जीवन समुन्नत न हो। आन के मानव में सतोप, निराकुलता और अनुरासन और भिनय आदि नाम की फोड़ चीज इसलिए

युद्ध राज्य में भी नहीं लगा वह भी लगाकर उमरी रिपोर्ट सरकार द्वारा प्रकाशित होती है। प्राणियत्र और मामोत्पन्न को उद्योग बत लाया जाकर उसके लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसी प्रकार मछली उद्योग आदि की स्थापनाएँ हो रही हैं। इन्हीं चार पापों से अति वृष्टि अनावृष्टि आदि इतिभीतियाँ आती हैं। परन्तु हिंसक नास्तिक लोक्यातिक लोगों का मन आधिदैविक कारणों की कारणता पर विश्वास नहीं।

यत्र मनुष्य की और रासवर शामकयुग की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तो पाप पराधा पर पहुँच जाते हैं और उन पापों से पडा भर जाता है, तो वह फूटे बिना नहीं रहता है।

नास्तिक कौन होता है—

जैन धर्म की मूल भित्ति सत्कार पर आधारित है जैन धर्म केवल भक्तिवाद पर ही आधारित नहीं किन्तु उमरा मूल ध्येय त्याग, सयम और सत्कार है। यद्यपि हिंसा का सभी धर्मों में निषेध है परन्तु जैसा हिंसा और अहिंसा का लक्षण जैन सिद्धान्त में है, वैसा कहीं देखने में नहीं आता। दूसरी बात यह भी है कि जहाँ भी अहिंसा से स्पर्श में बाधा आई है वहीं जैनधर्म ने हिंसा को अपना कर भा उसे अहिंसा ही मान लिया है। जैनधर्म ने हिंसा का लक्षण किया है कि जिससे अपने परिणामों में अथवा इन्ध में राग द्वेषादि विनाशी भावों की उत्पत्ति हो उसी का नाम हिंसा और इनकी उत्पत्ति न होना ही अहिंसा है।

निम्न प्रकार मनुष्य, गृहस्थ और सातु दो भागों में विभक्त है जैसी तरह अहिंसा भी पात्र भेद में दो भाग में विभक्त है। एक मानूचित अहिंसा और दूसरी गृहस्थोचित अहिंसा। मानूचित अहिंसा का दूसरा नाम मनुदेश्य अहिंसा है और गृहस्थोचित अहिंसा को एक देश अहिंसा कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जैनधर्म में ऐसी परस्पर विरोधी बातें भी नहीं हैं।

जैन धर्म में मानु मनुदेशीय हिंसा की निवृत्ति के लिए ही नान दिगतर रहते हुए अपना कठोर संयत जीवन चिताना है। गृहस्थ विरोधी आरम्भी और उयोगी धार्या को चट्टन ऐसी सारधानी से करता है कि निम्नसे प्रस जीरों की हिंसा न हो सके और मरुत्य पूर्वक तो यह किसी को पीडा पहुँचाने का अधिकार ही नहीं रखता। जब अपने प्रति राग भाव होता है तब एसी 'स्य' के प्रति ममत्व से यह परतीर को पीडा पहुँचाकर अपना मतलब बनाता है। स्य के प्रति राग डाँपर के प्रति द्वेष है।

जैन धर्म का इतना परमेश और आर्ग मानना पूण मिद्धत होते हुए भी वैदिक लोगों ने जैन लोगों को नास्तिक कहना प्रारम्भ किया। जैनों को नास्तिक कहाने का मान लन में कारण मनुस्मृति का "नास्तिको वदति इह" यह वाक्य है।

कोई भी अहिंसा प्रेमी वेद धार्यों को इन्ही निम्न तीर करने में अममय है कि उनमें चण्डाल हिंसा का निर है। अश्वमेध गोमध, नरमेध याग क्त इना

यज्ञ यागादि में पशु हिंसादि का समर्थन अपनी स्वार्थ की सिद्धि के लिए है। वे स्वार्थ कई प्रकार के हैं। जैसे स्वर्गेन्द्रा, पुत्रेन्द्रा, धनेन्द्रा आदि। जहाँ अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरे के प्राणों की हत्या भी की जा सके ऐसे वाक्या को कोई भी अहिंसक, शास्त्र के रूप में मानने को तैयार नहीं हो सकता है। इस पर भी हम हिंसा के समर्थन के लिए यह कहना कि "वेद विहिता हिंसा, हिंसा न भवति अर्थात् वेद में कहीं हुई हिंसा, हिंसा नहीं होती, आश्चर्य है।

वेद न मानने वालों को ही नास्तिक कहा जाय तो वेद की चार शाखाएँ और १२० उपशाखाएँ हैं। उपशाखाओं को आर्य समानी नहीं मानते तो वे भी नास्तिक ठहरते हैं। ग्रन्थ मन स्मृतिकार ने चारों वेदों में सामवेद की ध्वनि को अपवित्र माना है जैसा कि इस वाक्य से स्पष्ट है "सामवेद स्मृत विन्य तस्मात् तस्यायुधिर्ध्वनि अध्याय ४ श्लोक १२४। गीता में चारों वेदों में सामवेद को प्रधान माना है। तीन को अप्रधान मानना भी स्तुत्याभास ही है। यथा वेदानां सामवेदोऽरिम् अध्याय १० श्लोक २२।

गीता के अध्याय ८ श्लोक २६ द्वारा शुक्ल और कृष्ण दोही गतियों का विधान किया गया है। आगे जाकर वेदादि पाठकों का कृष्ण मार्ग (काला रास्ता) बतलाकर उसे निःसार और हेय बतलाया है। ११ वें अध्याय के ५३ वें श्लोक द्वारा वेद अध्ययन को अकिंचित्कर तथा गौण बतलाया है।

नाह वदनेतपसा न दानेन न चज्यया ।

शस्य पत्रिधो द्रष्टु दृष्टानमि मा यथा ।

गीता (११५३)

इसी प्रकार ४७ वें श्लोक द्वारा भी वेदाद्ययन को निवारना ही बतलाया है । इसी गीता के १५ वें अध्याय में प्रारम्भ में ही वेदा को सत्कार रूपा वृत्त के पक्षे बतलाकर असंगत (दिगम्बरत्व) रूपा शस्त्र से पक्षे सहित उक्त समार रूपा वृत्त को काटने के लिए उपदेश दिया है और अययपद की प्राप्ति मान मोह वाम द्वेष और परिग्रहादि से रहित होने पर ही बतलाई है । यथा—

उग्रमूलमथ शम्भुमरुतय प्राहुरन्ययम् ।

ह्युत्तसि यस्य पर्णानि यस्त वेद म वदन्ति ॥१॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शम्भु गुणप्रवृद्धा रिपय प्रजाला ।

अधश्च मूलान्यनुसततानि कर्मानुग्रधीनि मनुष्य लोके ॥२॥

रूपमस्येह तयोप लभ्यते नातो न चादिर्नच मप्रतिष्ठा ।

अरुत्स्य मेन सुत्रिरूढ मूल असंगशस्त्रेण हृदय द्रित्वा ॥३॥

अत पर तत्परिमागित य यस्मिन् गता न निवर्त्तति भूय ।

तमेव चाद्य पुरुष प्रपद्ये यत प्रवृत्ति प्रसृता पुराणी ॥४॥

निर्मानमोहा नितसग दोषा अध्यात्म नित्या विनिवृत्तकामा ।

द्व द्वैविमुक्ता सुगदुग्ध सशैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्यय तत् ॥५॥

इस प्रकरण में यह बात भी बतलाई है कि अयय पद (मोक्ष पद) यह है जहाँ से वापस आने का कारण नहीं

परतु बंदों के अध्ययन तथा वेदों यनयागादि से स्वर्ग लाभ ही मतलाया है। स्वर्ग से तो वापस पुण्य क्षीण होने पर आना ही पड़ता है जैसा कि गीता के ६ पत्र प्राय के २० वें श्लोक से सुस्पष्ट है।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है कि—
ह अर्जुन ! य वेद तो त्रैगुण्य विषय हैं। तू त्रैगुण्य रहित हो।
त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ! अ, २-४५ ॥

गीता में यहाँ तक वेदों के धार में कहा है कि—

यानिमा पुष्पिता वाच प्रदत्तव्यविपरिचय ।

वेदवाचरता पार्थ नान्यदस्तीति वादिन ॥२४२॥

हे अर्जुन ! वेदों के ही व्याख्यान में तब तो धारी यह कहते हैं कि स्वर्ग के अनिरिक्त कुछ नहीं है वे मूर्ख हैं और वे केवल लुभाने वाली वाणी बोलते हैं। उतनी यह वाणी असली नहीं किंतु पुष्पित और पलनयित है।

ऋग्वेद में लिखा है कि—तो यत्स्वर्ग नो नाम पर सगर न हो सके वे पुत्रर्षी हैं, ऋणी हैं और नीचस्थान से बने हुए हैं।

मत्र १० सू, ४४ स० ६

इसका उत्तर उपनिषत्कार मुंडोपनिषत् में लिखते हैं कि—

हे ब्रह्म ! यह तेरी यज्ञस्वी नोमा तो पत्थर की नोमा है और यह भी जायें शीण (टूटी फूटी) है। तुम जैसे मूर्ख जो उसे मर्यादाकारक समझ कर आनन्दित होते हैं, वे संसाररूपी सागर में जल मरणरूप गोते खाते रहते हैं।

वानराश अपने शास्त्रा में घुसेड़ कर अपनी अनुयायिनी जनता से गुमराह किया ।

नास्तिकों वचन निम्नक यन्त्रि इस वाक्य को शों बोला और लिगा जाय कि नास्तिक को वेदनिन्दक" अथात् वेद निन्दक कान नही है तो ठीक ही मन्ता है ।

नास्तिक शब्द का अर्थ तो समस्त शास्त्रों के आधार पर यही होता है कि जो परलोकान्ति (स्वर्ग मोक्ष नरक आदि) न मानता हो वह नास्तिक है । जैना की जैसी परलोक में श्रद्धा है उसी क्रिमी की नहीं है । वास्तव में देखा जाय तो सच्चे आश्रितन ही पैत हैं । परन्तु खेद है कि वह सत्या के आधार पर आश्रितन को नास्तिक और नास्तिका को आश्रितक घतलाया जाकर जन शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है ।

भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठपुत्र भरत के इस धर्मक्षेत्र भारतवर्ष दश में जो पहले घोर हिंसा का साम्राज्य फैला और खून की नदियाँ बहो वही सन यनों का ही प्रभाव था । इस हिंसा को यन्त्रि भगवान् महारीर और महात्मा बुद्ध न रोक्ते और उनके उपदेशामृत की धारा न बहती तो थान जगह जगह यज्ञ यागान्तिरूप कमाइ खाने दृष्टिगोचर होते । थान भारत से मुसलमान तो अधिकार चने गये किन्तु फरोडों वैदिक कटलाने थाने भारतीयों में २५ फरोड के करीन पशुओं को खा रहे हैं । वैदिक कटलाने थाने थोड़े से वैदिक ही मासभोजी नहीं है । थानी तो सभी मास खाने हैं । गोर्धों को भी यदि कोई

माम त्विनादे नो ज्ञानेते हे ण मृत पशु को भी ये लोग
 भा जात है । और तो क्या ? अनेक नामाङ्कित वैदिक सन्यासी भी
 ब्रह्मोक्त हिंसा को वैध हिंसा मानते हैं । उनकी दृष्टि में आन
 नरमव यह किया जाकर मनुष्य कभी होमना पड़े तो वैध या
 उचित है । आन जो प्रचुर मात्रा में गोहत्यादि रूप पशुघ्न
 होता है और उसे जय रोम्ने को कहा जाता है तब नितने ही
 क्षामेसी जय यह कहते हैं कि गोरथ तो वेदा और पुराणों
 से भी स्वीकृत या मान्य है और प्रमाण भी दते हैं तो मस्तक
 नीचा हो जाता है ।

वामन में सभी भारतीय मस्तिष्क अहिंसा है क्योंकि भगवान्
 ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत से यह चली है । भगवान्
 ऋषभदेव दिगंबर जैन धर्म के प्रकाशक या नन्दारक थे । यही
 मस्तिष्क भारत में करोड़ों वर्षों से थी । परन्तु उसे चैनों की
 बतलाइ जाकर तिरस्कृत की जाती और उसकी मूर्तों भी उड़ाइ
 जाती है । जैना के नितने आचरण जैसे रात्रि भोजन त्याग
 जल ध्यान कर पीना आदि हैं, उन समस्त उल्लेख और समर्थन
 वैदिक ग्रन्थों में भी है परन्तु उन्हें जैना का समक तिरस्कृत और
 उपक्षिप्त किया जा रहा है । भारत में सभी भारतीय मस्तिष्क
 को निर्मूल करने में नितना वैदिक संप्रदायवादियों का हाथ
 रहा उतना और किसी का नहीं ।

चैनों के लिए, अहिंसा का अर्थ कायरता करके कायरपन
 घोषा गया परन्तु जैन धर्मोक्त अहिंसा का तत्त्व नहीं समझा

गया। जैनों में बड़े २ राजा और मन्त्राट् हूये हैं। जिन्होंने सत्तार में हजारों लाखों शत्रुओं को मारा है जो विरोधी हिंसा में मग्न है। शूद्रस्थ जैन विरोधी हिंसा का अधिकार रखता है परन्तु विरोध के नाम पर सावधानता के बिना चाहे जिसको मार डालना चाय नहा है। विरोध में जितना अपराध हो उतना ही दंड चाय मगत है। यह कयाय ना कि किसी पशु पक्षी द्वारा जरासी हाति पहुँचाने पर उसे मारने से कम सजा न दी जाय। यदि कोई मन्त्री आपके शरीर पर बैठती है तो उसे मार डालना नड नहीं किन्तु उतना ही दंड पर्याप्त कि उसे पत्नी या हाथ से उज लिया जाय। मप को देखने ही मार डालना यह कौनसा चा? यदि यह पक्का विश्वास हो जाय कि मुझे खाने को ही आ रहा है तो उस समय जो भी उचित हो प्रतिहार लिया जाय। उससे बचकर कहीं भगा भी जा सकता है। उस सर्व को मन्त्राणि द्वारा निर्दिष्ट भी किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य पशुओं आदि के विषय में भी विचार पूरक ही मर धान करनी चाहिये। इसी का नाम भारतीय सत्कृति है।

संस्कृति की छिन्न भिन्नता के कारण—

भगवान् अपभदेव उस समय सबसे बड़े राजा थे। उन के सत्तार से प्रेरित होकर आत्मसाधना के लिए धन को चले गये सो उनके साथ हजारों छोटे मोटे राजा भी केवल स्वामिमति या मुशानद से धन को चले गये और जो वे करने लगे सो ही

चे करने लगे परन्तु तपस्या की कठोरता ने उनके मनास मात्तन कर मके और सभी दिचरित हो गये। इस में तपसा, कलिपचार दारम पर लीपना को लम्पानद का इमिपि वही नाना प्रकार के वेशाधो धार्य कर रहनमा की वमत्र सम्प्रदायों और मना की स्थारना कर ली गई।

वैसे प्रारम्भ भए राजनैतिक मना वपुत्र मी लम्पु क्यों उरा लोगों की सके उदेश्यों काया कायों में कम्पन होती गई त्यां त्यां ही अनक राजनैतिक सम्पदे बन गई। प्राण तो मस्यापि ने सम्प्रदायवाद के अन्तर्गत लिया है। उरा उरा मे मतभेद अथवा मेलन कलिपु लम्पु मस्या में छोटी मोटी मस्यायें दिपान्त हैं वीप ही मस्या अपमदेय के मिहान से अलग होय वद ल पर टपना मनों ने उम लिया। यहा पारम्पिक मस्या कलिपु का पहने भी कारण बना और आग भी उरा मस्या मस्या-वपने में कारण है।

इस परस्पर मतभेद और धर्ममत्ता कायपुत्र के मने ही दश को दिभावन किया। वीप मस्या कायपुत्र ने नेता लोग राज्य शासन म धर्ममत्ता कायपुत्र म वन म यनों के निमाग में अना प्रयत्न कायपुत्र को कमी मस्या भी नहीं होती। उन्होंने अपने कायपुत्र होने के मने सुखी जीवन में वाया समम करे लीपने विमाजन के की और यह म यरली म

राज्यशासन की आधारशिलायें अटल सिद्धांत ही होनी चाहिएं । अटल सिद्धांत अहिंसा, मत्त, अर्थाय आदि पर ही पूणत आधारित हो सकते हैं । बहुमम्मति के आगर पर आधारित राज्यशासन म जन अल्पसंख्यक समुदाय अपने धर्म या सिद्धांत का पालन नहीं कर सकते तो वे विरोधी बन जाते हैं और उनके दमन के लिए मत्तारूढ़ दल की हिंसा का आश्रय लेना पड़ता है तब सघष द्विडकर शांति भंग हो जाती है और सभी लोगों के हृदय से तत्काल लाभ के लिए अहिंसा हिंसा के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।

जब अहिंसा से देश में हिंसा आती है तो राजनीति से धर्म का सम्बन्ध हट जाता है और जब धर्म शून्य राजनीति हो जाती है तो केवल भौतिकवाद बनपता है और आत्मदान नष्टप्राय हो जाता है । जो आमरादी होते हैं उनको भी भन्वमार कर भौतिकता का आश्रय ही लेना पड़ता है और जब पूरा भौतिकवाद सत्र ठसाउस भर जाता या फैल जाता है तभी घोर प्राति मचकर प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर देती है ।

राजनीति धर्म के आश्रित हो तब तो देश का कल्याण होता है और उसमें सुग्न शांति बनी रहती है परन्तु धर्म, राजनीति के आश्रित हो जाय तो देश में अमङ्गल, अकल्याण और दुःख की परम्परा स्थापित हो जाती है । ज्यों ज्यों राजनीति के आश्रित धर्म रहा है त्यों त्यों ही दुःख परम्परा बढी है ।

जैसे 'अहिंसा परमो धर्म' का सिद्धान्त महान् आदर्श और मर्यादा है परन्तु ज्यों ज्यों साम्राज्य ने हिंसा को अपने स्वार्थ के लिए अपनाई त्यों त्यों धर्मगुरु कहलाने वालों ने भी धैर्य ही शास्त्र बना डाले चिनसे कि उन राज्यों का स्वार्थ सिद्ध होता था। वे यदि मासभक्षी थे वे वन नदीपानी थे तो धैर्य ही धर्म के पोषक वाक्य भी राज्यों में निवृत्त दिये या धैर्य ही धर्मों के प्रतिपादक शास्त्र तब बना गये, पञ्च धर्म अधर्म की पहचान जाता रहा। विम बात को धर्म धर्म कहता है उसे दूसरा अधर्म मानता है। ऐसी अवस्था में राज्य के साथ साथ जनता का विग्रह होकर विचार मूर्त बन जाती है जनता के मन बुरे होने का विमोचनी राज्य पर होती है परन्तु जब राज्य स्वयं ही बलाघायनी हो तो जनता वैसी न बने, यह नहीं हो सक्ता जब जनता का मध्य केन्द्र भौतिक ही रह जाय तो जनता में सामान प्रचलित राज्य की रक्षा करना नहीं चाहती। आलोचन आवेगा, यह वैसा आवेगा यह यह न सोचकर ही कहता है उसे मिटा देना ही तत्पर रहती है।

भारत देश की घासबिक सुखी न्या है, इमरा भी वन नहीं रहा। यदि कोई वनलाय है उस वनलायने यान की धर्म से सम्बन्ध होने के कारण धर्म और टपेला कर

आज बड़ बड़ विद्वान् भी धर्म को राजनीति के आश्रित बनाते जाकर देश में अमानवीय अमानवीय वातावरण उपस्थित कर रहे हैं। राजदशासक जो भी अपनी नीति बनाता है उसमें अपना बुद्ध न बुद्ध साथ निहित होता है साथ में वे तात्कालिक स्वार्थ के आगे तात्कालिकता को भी बहुत कम महत्व देते हैं। जिससे वास्तविक सभ्यता, जिसका अर्थ राम धर्म है नष्ट हो जाती है। जैसे भारत से अंग्रेजों का राज्य हटाने के लिए उस समय के स्वराज्य नेताओं ने छात्रों को अंग्रेजों के विरुद्ध तैयार किया, अन्ततः सत्याग्रह, इंडियाल आदि साधनों को अपनाया परन्तु जब उनका राज्य शासन हो गया तो इन सबको धुसा बतलाया जाकर इन पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया जाता है। और भी ऐसी अनेक बातें हैं जो उस समय की नीति आज का अतीति में शामिल है।

आज जो राज नीति या लोक नीति चल रही है उस पर किसी का नियन्त्रण नहीं बल्कि अनियंत्रित है उस पर नियन्त्रण होना चाहिये, धर्म अथवा सभ्यता का। परन्तु उस पर धर्म और सभ्यता का नियन्त्रण नहीं किन्तु आज तो धर्म अथवा सभ्यता राजनीति से नियंत्रित होकर पिछरे में बन्द है।

उपसंहार

भारत के सर्व प्रथम आदि प्रजा मगधवा श्वरभद्र मरु
 चक्रवर्ती एव तदुत्तर व्यक्तियों के इतिहास में यह सुस्पष्ट है कि
 भारत का मूल मस्तिष्क त्याग मयम और सत्कार है। पूरुषत्व
 में चक्रवर्ती राज महाराज। तत्र पुत्र को राज इतर साधु बन
 जाने थे। इही घटनाओं से भारत मारे किरा का गुण रहा।
 त्याग, मयम सत्कारादि का नाम ही सस्तिष्क ("चन पृति") है।
 त्याग मयम सत्कारादि परमोय आत्मा तैतपरम में है। अस्तिष्क
 भारत की मूल मस्तिष्क जैन्त्य प्रधान था। अस्तिष्क अस्तिष्क
 पात्र शेष में यह मस्तिष्क घटती चनी ग. धार धार ही सदा
 ही शौचनीय तथा में ह।

देश म सत्कार की आरररररर अपनी संस्तिष्क की रक्षा
 के लिए ही होता है। हमारा भारत दगमन्त्य दूना है तो अस्तिष्क
 तिरामिया का मतव्य है कि अपनी सस्तिष्क का संररररर य अस्तिष्क
 करें। इसके लिए परमाररररर है कि अस्तिष्क की अस्तिष्क
 करने में पूरा प्रयत्न विद्या जाये। जनाधर अस्तिष्क दोनों ही का
 समाग पर चलने को जोर दिया जाये। अस्तिष्क ही सदा है
 कि मस्तिष्क-रक्षा की चिन्ता रसन सत्कार एवम सत्कारादि
 है। इही व्यक्तियों का दूसरों पर अस्तिष्क मस्तिष्क है।

सर्वेऽत्र सुग्निं सतु सर्वेऽस्तु श्रुत्वा ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा क्षीण्डुस्तनाग्भवेत् ॥

द्वितीयवार ५०००
मृत्यु चार श्राना

२५) रु० की १०० प्रति मँगाकर
शिक्षित लोगों के हाथ में
दीजिये ।

❀ पशुपथ मवने वडा देशद्रोह ❀

यह पुस्तक पशुबलि, चमड़ भासभक्षण आदि के विरोध में
कविता में बहुत ही रोचक और प्रभावशाली है।

मैंगार मर्त सागरण में वाटिय । कई
सस्करण निकले चुपे हैं ।

(०- के (२॥) रुपये, बाह स्वर्न अलग ।

मिलने का पता—

अहिमा कार्यालय

जयपुर सिटी